Vidya (2016) Vol. No : 1-2

Original Paper

ISSN: 2321-1520

गुजरात के हिन्दी साहित्यकार

प्रो. डॉ.रंजना अरगडे।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग एवं निदेशक,भाषा साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद

argade_51@yahoo.com

*Corresponding author

Received Date: 7-8-2016

Published Date: 27-9-2016

सभाजनो, सबसे पहले तो मैं आप सभी का अभिवादन करती हूँ तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का हार्दिक आभार मानती हूँ कि मुझे आप सब के बीच अपनी बात रखने का अवसर दिया। मुझे गुजरात के हिन्दी साहित्यकारों पर बात करनी है। ग्लोबल विलेज(विश्वग्राम) तथा वसुधैव कुटुंबकम के दौर में ही हम हिन्दी रचनाशीलता की प्रांतीय अस्मिता की बात कर सकते हैं!

अन्य हिन्दीतर प्रदेशों की तुलना में गुजरात का हिन्दी के साथ एक अलग ही संबंध है। आँगन के साथ जैसे घर का। वह उसका हिस्सा भी है और उससे अलग भी। केवल अपभ्रंश के कारण यानी मूल की समानता के कारण ही नही, भाषा की एक साझी सांस्कृतिक विरासत भी होती है । गुजराती हिन्दी की यह सांस्कृतिक विरासत धर्म,आस्था तथा सामाजिक रहन सहन के रूप में समाज में भी यह उजागर हुई है और साहित्य के माध्यम से यह सब अभिव्यक्त भी होता रहा है। गुजरात के मध्यकाल में ब्रज तथा राजस्थानी में बहुत कुछ लिखा गया , अतः इसके संदर्भ में जितना कहा जाए कम ही है। डॉ. अम्बाशंकर नागर, डॉ. गोवर्द्धन शर्मा, डॉ.दयाशंकर शुक्ल, डॉ रामकुमार गुप्त,डॉ.महावीरसिंह चौहान, ओमानंद सारस्वत आदि ने इस क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण काम किए हैं। इस संदर्भ में एक संकेत अवश्य करना चाहूँगी कि मध्यकाल में प्रचलित ब्रज,पुरानी गुजराती तथा राजस्थानी एवं संतों की सधुक्कडी कुछ इस तरह प्रवर्तमान थीं कि जैसे एक ही व्यंजन, विभिन्न सम्मिलित स्वाद से युक्त हो।

हम सीधे अपने विषय पर आते हैं। डॉ. अंबाशंकर नागर तथा डॉ महावीर सिंह चौहान ने गुजरात के हिन्दी रचनाकारों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा है। एक वे, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और एक वे जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जो उत्तर प्रदेश बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों से हिन्दीतर प्रदेशों में आकर बसे हैं। इश्ट 'गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता- युग संपृक्तिइश्ट' में डॉ. महावीर सिंह चौहान ने एक बहुत मार्मिक प्रश्न उठाया है कि क्या गुजरात की समकालीन हिन्दी काव्य परंपरा गुजरात की मध्यकालीन हिन्दी रचनाशीलता का ही सहज परिणाम है ै इस प्रश्न में एक और नुक्ता जोड़ना अर्थपूर्ण होगा कि रचनात्मकता के स्तर पर आज लिखा जाने वाला हिन्दी साहित्य अपनी स्तरीयता में मध्यकाल में लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्य के समकक्ष है ै इस संदर्भ में डॉ शिवमंगल सिंह सुमन का यह कथनअर्थपूर्ण है - हिन्दी भाषी प्रांतों में रहने वाले हिन्दी के कवि और लेखक इस तथ्य का अनुमान भी नहीं कर सकते हैं कि हिन्दीतर प्रांतों में रहने वाले कवियों और लेखकों के क्या अभाव वसभाव हो सकते हैं। इसमें अड़चनें और सुविधाएं दोनों साथ-साथ होती हैं। अड़चन तो यह है कि दैनंदिन व्यवहार में न आने के कारण ऐसी रचनाओं में हिन्दी मुहावरों की पकड़ प्रयत्न साध्य हो जाती है और सुविधा यह है कि अन्य प्रांतीय भाषाओं का भाव सौकार्य और समृद्धि उसे अनायास ही प्राप्त हो जाती है जिससे हिन्दी का मानस प्रसार और अधिक व्यापक हो कर भारत की विभिन्न साधनाओं की समन्वय भूमि बनने का आधार प्राप्त करता है। (सुमन) सुमन जी जैसे रचनाकार हिन्दीतर भाषी प्रांतों की रचनाओं को हिन्दी के प्रसार में उपयोगी मानते हैं। ऐसे में नागरजी ने हिन्दी रचनाकारों का जो विभाजन किया है , उस पर भी एक दृष्टि डाली जा सकती है और उसे वर्तमान समय में थोड़ा इस तरह से विस्तृत किया जा सकता है।

लेखक की स्थानीयता की दृष्टि से अगर देखा जाए तो ; १-गुजरात में जन्मे हिन्दीतर भाषी रचनाकार, २-गुजरात में प्रवासी की हैसियत से आए हिन्दी भाषा-भाषी रचनाकार, ३-गुजरात में आकर स्थायी रूप से बस जाने वाले पर-प्रांतीय रचनाकार और ४- गुजरात में जन्में हिन्दी भाषी रचनाकार। व्यवसाय की दृष्टि से देखें तो ये रचनाकार अध्यापक,व्यवसायी, व्यापारी तथा मुक्त-लेखक (फ्री-लांसर) हैं।

गुजरात में हिन्दी रचनाशीलता के विषय में तथा शोध के अन्तर्गत कई दस्तावेज़ी लेख एवं पुस्तकें हमें मिलती हैं। हिन्दी साहित्य परिषद के जो तीन महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं- डॉ अंबाशंकर नागर अभिनंदन ग्रंथ, डॉ रामकुमार गुप्त अभिनंदन ग्रंथ तथा आचार्य रघुनाथ भट्ट अभिनंदन ग्रंथ थ उनमें गुजरात के हिन्दी रचनाकारों की जो सूची दी गयी है वह एक हज़ार की संख्या के करीब होगी। असल में गुजरात की हिन्दी रचनाशीलता के व्याप का अंदाजा लगाने के लिए ये तीन ग्रंथ तथा डॉ. रमण पाठकजी का 'गुजरात में लिखा हिन्दी साहित्य का इतिहास' बहुत ही महत्वपूर्ण स्रोत हैं। पाठकजी का लिखा इतिहास अब अप्राप्य है। इसका पुनर्प्रकाशन ज़रूरी है। इनमें हम डॉ. रघुवीर चौधरी के, 'गुजरात का स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी साहित्य' को भी शामिल कर सकते हैं। २००३ तक के आँकड़े इन ग्रंथों में हमें मिलते हैं। उसके बाद हिन्दी रचनाकारों की सूची और भी बढ़ी है।

गुजरात में हिन्दी लेखन के आरंभिक रचनाकार चूंकि व्यवसाय से अध्यापक भी रहे हैं अतः हिन्दीतर प्रांतों में उनकी आवाजाही रही। डॉ. अम्बाशंकर नागर के साथ जिन रचनाकारों ने लिखना आरंभ किया था उनमें से अधिकांश रचनाकार हिन्दी भाषी प्रांतों से यहाँ आ कर बसे थे। अतः उनके लेखन में हिन्दी के वही प्रचलित स्वरूप और रचनाविधान था जो उनकी स्मृति में रचा बसा था। । कविताएं, खंड काव्य,

ग़ज़लें और समीक्षा। फिर क्रमशः रचनात्मक गद्य लेखन भी सामने आया और कहानी उपन्यास तथा निबंध लेखन को गति मिली। नाटक लिखने वाले रचनाकार तुलना में कम आए।

गुजरात में लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्यकारों का एक विभाजन हम इस प्रकार भी कर सकते हैं। भारतीय मध्यकाल में लिखने वाले दयानंद आदि को गुजरात की हिन्दी रचनात्मकता के भूमिका काल में सामहित कर सकते हैं। इसके बाद जो रचनात्मकता का पहला स्तर बनता है उसमें डॉ.अंबाशंकर नागर, रामदरश मिश्र, भगवत शरण अग्रवाल, किशोर काबरा, रामकुमार गुप्त, अविनाश श्रीवास्तव, सुधा श्रीवास्तव, भगवानदास जैन, चंद्रकांत मेहता, रघुनाथ भट्ट, शिवकुमार मिश्र, वसन्तकुमार परिहार, भगवतप्रसाद नियाज़ आदि को शामिल कर सकते हैं। इनमे अकादमिक कारणों से डॉ अंबाशंकर नागर की तथा रचनात्मक कारणों से किशोर काबरा एवं बसन्तकुमार परिहार की पहचान बनी। पर सबसे अधिक कोई नाम गुजरात के बाहर जाना गया तो वह अपने समय में डॉ. अंबाशंकर नागर तथा व्यापक रूप से शिवकुमार मिश्रजी का ही है।

दूसरे स्तर पर सुल्तान अहमद, श्रीराम त्रिपाठी, फूलचंद गुप्ता, अंजना संधीर, द्वारिका प्रसाद सांचीहर, शशी पंजाबी, सुभाष भदौरिया, सूर्यदीन यादव आदि को शामिल कर सकते हैं। यह कहना चाहिए कि सुल्तान अहमद, श्रीराम त्रिपाठी तथा अंजना संधीर जैसे रचनाकारों ने गुजरात के बाहर हिन्दी जगत में अपनी पहचान बनाई है।

तीसरे स्तर पर विमर्श आधारित साहित्य संगठनों से जुड़े रचनाकारों को शामिल किया जा सकता है जो एक तरह से एक उत्तर-आधुनिक गतिविधि है। उसमें 'अस्मिता'संगठन की रचनाकारों को तथा रचनाशीलता की उनकी विशेष भूमिका को शामिल किया जा सकता है। बड़ौदा तथा अहमदाबाद की महिला रचनाकारों का यह संगठन है जो केवल हिन्दी भाषा तक ही सीमित नहीं है। यह भारतीय भाषाओं में लिखने वाली महिलाओं का संगठन है। यह पिछले पच्चीस वर्षों से कार्यरत है। इसमें गृहणियों से ले कर अध्यापिकाओं तथा अन्य व्यवसाय से संबंधित महिला रचनाकार शामिल हैं।

यहाँ 'स्वर्णाभा गुजरात' जैसे महत्वपूर्ण प्रकाशन का भी उल्लेख करना आवश्यक है जिसका संपादन अंजना संधीर ने किया है। यह प्रकाशन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें गुजरात में लिखने वाली १०० से अधिक कवियित्रियों को सम्मिलित किया गया है। इनमें से बहुत सारी, बल्कि अधिकांश कवियित्रियां बहुत पहले की हैं, पर यह प्रकाशन-कर्म, यह पुस्तक उत्तर- आधुनिक गतिविधि का हिस्सा हो जाती है। महत्व इसी बात का है। लगभग इसी तरह का काम बिहार की श्रीमती मिथिलेशकुमारी ने अपने प्रदेश की महिला रचनाकारों को एक साथ प्रकाशित कर के किया है।

रामकिसन मेहता तथा प्रभा मजुमदार जैसे रचनाकारों का विशेष उल्लेख इसलिए करना चाहिए कि उन्होंने विमर्श केन्द्री तथा बौद्धिक संवेदना को अपनी रचनात्मकता में शामिल किया है। यहाँ उन गुजराती रचनाकारों को याद कर लेना चाहिए जिन्होंने गुजरात के बाहर अपनी पहचान बनाने के लिए हिन्दी में लिखा। सरूप ध्रुव तथा चीनू मोदी ऐसे दो रचनाकार हैं। एक ने विचारधारा के कारण तो एक ने यश प्राप्ति की कामना से हिन्दी माध्यम में अपनी रचनाएं लिखीं।

नारी विमर्श की तरह दलित विमर्श के संदर्भ में धीरज वणकर तथा धनंजय चौहाण जैसे रचनाकार भी शामिल किए जा सकते हैं जिन्होंने दलित संदर्भ को केन्द्र में रखा। अपनी बात दूर तक पहुँताने के लिए गुजराती दलित कवि राजु सोलंकी ने भी कुछ रचनाएं हिन्दी में लिखी हैं। नारी विमर्श और दलित

विमर्श जैसी साहित्यिक प्रवृत्तियां भारतीय तथा वैश्विक संदर्भों की ओर संकेत तो करती हैं परन्तु यहाँ भी यह प्रश्न तो रहता ही है कि भारतीय अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में पहचान किस रचनाकार की हो पाती है। इनमें भी हम प्रभा मजुमदार अथवा नीलम कुलश्रेष्ठ या फिर रानु मुखर्जी जैसे कुछ नाम ही गिना सकते हैं। यहाँ मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि जिनकी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर नहीं हो सकी है वे कमज़ोर रचनाकार हैं। पर जब रचनाशीलता का माध्यम हिंदी चुना है तो मूल्यांकन का एक आधार तो यह रहेगा ही।

मैने यह जो विभाजन आपके सामने रखा उसमें स्तर से मेरा आशय गुणात्मक नहीं अपितु स्थित्यात्मक है। आप चाहें तो इसे पहली पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी आदि नाम से भी बुला सकते हैं। साथ ही इसमें जिन रचनाकारों के नाम दिए हैं वह केवल संकेत मात्र है। सुल्तान अहमद तथा श्रीराम त्रिपाठी की पीढ़ी के बाद भी रचनाकरों की एक नयी पीढ़ी आ गयी है जिसमें करतार सिंह सिकरवार, ईश्वरसिंह चौहाण, पूर्वी शास्त्री आदि कुछ नाम गिनाए जा सकते हैं। आज गुजरात में बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी के रचनाकार उपस्थित हैं और बहुत लिख रहे हैं। इन सभी के मूल्यांकन करते हुए दो-एक शोध प्रबंध भी लिखे जा चुके हैं।

अपने मतलब के लिए जो टूटा फूटा विभाजन मैंने आपके सामने रखा उसका आशय केवल इतना ही है कि गुजरात में लिखी जाने वाली हिन्दी रचनाशीलता के मोटे-मोटे बदलावों को रेखांकित किया जा सके। डॉ.अंबाशंकर नागरजी की रचनात्मक पीढ़ी ने जब लिखा तब उनका आशय गुजरात प्रदेश में अपनी एक पहचान को स्थापित करना था। फिर यह महात्मा गांधी की भूमि है। अतः हिन्दी के साथ का संबंध बहुत स्वाभाविक था। यहीं गूजरात विद्यापीठ भी था। उन्होंने अपने मूल वतन की भाषायी एवं साहित्यिक संस्कृति की स्मृति में हिन्दी को गुजरात में बसाया। इसकी तुलना हम उन प्रवासी/अप्रवासी या डायसपोरा के साथ कर सकते हैं जो भारत छोड़ कर विश्व के विभिन्न देशों में बसे थे। यहाँ मैं एक बात जोड़ देना चाहती हूँ कि गुजरात में लिखे हिन्दी साहित्य को प्रवासी दृष्टि से देख कर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। शोध के लिए यह एक अच्छा विषय हो सकता है। खैर ; इन रचनाकारों की रचनाओं में संवेदना के स्तर पर हिन्दी साहित्य की उनके अपने समय की रचनात्मकता ही रही। अंबाशंकर नागर और किशोर काबरा ने संभवतः इसीलिए प्रबंधात्मक रचनाएं भी लिखीं। इनके लिए गुजरात में रहते हुए अपनी मूल भाषा की रचनात्मकता को बचाए रखना महत्वपूर्ण था। इनकी व्यापक आइडेंटिटी या पहचान हिन्दी की थी; राजस्थानी, अवधी अथवा ब्रजी नहीं। गुजरात का अपना परिवेश हिन्दी भाषी परिवेश से भिन्न था; अपनी हिन्दी को परिशुद्ध रखने के लिए गुजराती के प्रभाव से बचाने का रचनात्मक प्रयास भी उनके लेखन में देखा जा सकता है। अतः इन रचनाओं मे न ही गुजरात प्रदेश के जीवन्त रक्त का संचार हो सका न ही हिन्दी प्रदेश की हवाओं ने उन्हें छुआ ।

इसके बाद की पीढ़ी के रचनाकारों ने इस बात की ओर अधिक ध्यान दिया कि उनकी रचनाओं में हिन्दी प्रदेश की रचनात्मकता तो आए ही साथ ही गुजरात के परिवेश को भी नज़रंदाज़ न किया जाए। भाषा की शुद्धता के प्रति रवैया इतना कड़ा भी नहीं था। संभवतः यह जागरुकता विचारधारा के कारण आयी। प्रबंधात्मकता छूटी और लंबी कविताएं आयीं जिसकी शुरुआत परिहार जी से होती है। यूं वह दो पीढ़ियों के बीच के रचनाकार कहे जा सकते हैं।

विमर्शों का संबंध यों भी व्यक्ति से कम और संगठनों से अधिक है। यहाँ तक आते आते हिन्दीतर प्रांतो की रचनात्मकता को पहचान मिलना आरंभ हो गया था अतः वहाँ की हवाओं और गुजरात के परिवेश ने रचनाकारों की रचनाशीलता को प्रभावित किया। अतः महिला रचनाकारों का अस्मिता संगठन अस्तित्व में आता है। उसी तरह हिन्दी में दलित लेखन का गुजरात में प्रवेश होता है।

गुजरात की हिन्दी रचनाशीलता में केवल हिन्दी मातृभाषी ही कार्यरत नहीं है अपितु ,गुजरात में रहने वाले और हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने वाले अथवा हिन्दी का उपयोग करने वाले सभी, जिनमें गृहणियों से लेकर व्यवसायी भी शामिल हैं। यह गुजरात की हिन्दी रचनाशीलता के लिए अच्छा संकेत है।

लेकिन मित्रो, गुजरात में लिखने वाले हिन्दी साहित्यकारों की बात जब हम करते हैं तो सवाल उठता है कि हम किस हिन्दी के साहित्यकारों की बात कर रहे हैं?क्योंकि अब हिन्दी की अस्मिता ही प्रश्नांकित हो रही है; वह भी सीधे तौर पर अंग्रेज़ी के कारण नहीं। सुधीश पचौरी का मानना है कि यह वास्तव में अंग्रेज़ीदाँ लोगों के'बाल्कनीकरण' की छिपी प्रवृत्ति है। एक विशाल भाषा को बोलियों में विघटित करने की प्रवृत्ति। हमने जिस भाषा को आज तक 'हिन्दी' के रूप में पहचाना है वह तो कई समृद्ध बोलियों से सजी ी सँवरी हिन्दी है जिसमें तमाम बोलियों के रचनाकारों ने उत्तम कोटि का साहित्य रचा है। साथ ही तमाम हिन्दीतर भाषी प्रांतों में रहने वाले हिन्दी रचनाकारों ने भी रचा है और हिन्दी को समृद्ध किया है। हम जो हिन्दीतर हैं, जिन्हें अवधि, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी चाहे कितनी भी दुरुह लगे हमारे सुधि समीक्षकों और संपादकों के सहारे मानक हिन्दी के द्वारा हम तुलसी ी जायसी, सूर-केशव के मर्म तक बड़ी सरलता से पहुँच ही जाते हैं।

सभाजनो, यह प्रश्न इसलिए भी कि आज आज़ादी के सत्तर वर्ष बाद भी हमारे देश में राजभाषा, राष्ट्र भाषा को लेकर एकमत नहीं बन पाया है। हम लोग जो यहाँ हिन्दीतर भाषी राज्यों से संबंधित हैं उनके लिए यह प्रश्न और भी जटिल होता जा रहा है। इधर भोजपुरी-हिन्दी पर जो घमासान मचा है वह कई सारे प्रश्न हमारे सामने खड़े करता है। भोजपुरी हिन्दी का झगड़ा हिन्दी प्रदेश का अन्दरूनी झगड़ा है यह कह कर हम उससे किनारा कर सकते हैं। लेकिन इस झगड़े के परिणाम तो हिन्दीतर प्रदेशों को भी भुगतने तो पड़ेंगे ही। हम लोग, जो हिन्दी में इतने रचे - बसे हैं कि कई बार यह भी भूल जाते हैं कि हिन्दी हमारी मातृभाषा नहीं है; लेकिन प्यार हम हिन्दी से उतना ही करते हैं जितना हिन्दी मातृभाषी अपनी भाषा से करते हैं। हमारे सामने बहुत जल्द ही यह निर्णयात्मक स्थिति आ जाने वाली है कि हम अब अपने पाठ्यक्रमों में किस हिन्दी को पढ़ें-पढ़ाएं ? आज अगर भोजपुरी, हिन्दी से अलग अपनी अस्मिता के लिए लड़ेगी तो कल क्या ब्रज, राजस्थानी, खड़ीबोली आदि अलग नहीं होंगी? मित्रो यह न भूलें कि भाषा बोलने वालों की संख्या के आधार पर राजभाषा तय होती है। बोलियाँ जब अपनी अस्मिता की पहचान के लिए अलग होंगी और आठवीं सूची में स्थान पाएंगी तो राजभाषा के रूप में हिन्दी का स्थान प्रश्नांकित हो जाएगा। जब यों भी भाषाएं तथा समाज-शास्त्रों के विभिन्न विषय संकट के दौर से गुज़र रहे हैं ऐसे में भाषा की यह अलगाववादी मानसिकता हिन्दी के मामले में खतरे की घंटी ही समझनी चाहिए। आठवीं सूची में स्थानापन्न होने के विवाद का भविष्य इतना कुरूप है कि अन्य भाषाओं की बोलियाँ भी इसके लिए लड़ सकती हैं। झारखंड, छत्तीसगढ़ और तेलंगाना के बाद कतार में कौन- कौन होगा? यह भौगोलिक 'बाल्कनीकरण' है, जो भाषाओं के बाल्कनीकरण की ओर ले जाता है।।

ऐसे में हमारे सामने एक ही विकल्प रहेगा- केवल अपने ही प्रदेश में लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्य को अपने पाठ्यक्रम में पढ़ना। यानी हम अपने पाठ्यक्रम में केवल गुजरात में लिखा जाने वाला हिन्दी साहित्य ही पढेंगे! अधिक से अधिक हम हिन्दीतर प्रदेशों का एक समूह बनाकर अपने हिन्दी- पाठ्यक्रम को कुछ इस तरह गढेंगे कि'हिन्दीतर भाषा प्रदेशों का हिन्दी साहित्य'। इसमें अलग अलग हिन्दीतर भाषी प्रदेशों में लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्य का 'अध्ययन एवं अनुशीलन' होगा! तो सवाल यह है कि क्या हम इस प्रकार का पाठ्यक्रम पढ़ना चाहेंगे? आज जब ज्ञान के सभी विषय अर्थ के तराज़ू से तोले जा रहे हैं और ये जो हिंदी है , वही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है ऐसे में ये नयी परिस्थितियाँ कैसे संभलेंगी ? वर्तमान पाठ्यक्रम में एक कोर्स के रूप में इसे पढ़ना अलग बात है, पर पूरा पाठ्यक्रम ? फिर जब यह बोलियाँ अलग हो जाएंगी तब हमारे पाठ्यक्रम में न सूरदास होंगे न तुलसी न मीराँ न ही कबीर। फिर अन्य मध्यकालीन कवियों को पढ़ने का प्रश्न ही नहीं रहेगा। ऐसे में मुझे कहना चाहिए कि आज की संगोष्ठी का यह विषय हमें उस अकल्पनीय और अनिच्छनीय संकट के लिए मानसिक रूप से तैयार करेगा।

इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि गुजरात के कई महापुरुषों ने हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय एवं भारतीय हितों को सिद्ध किया। मध्यकाल में मीराबाई एक ऐसा नाम है जो हिन्दी तथा गुजराती दोनों ही साहित्यों के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान को प्राप्त कर प्रतिष्ठित हैं। प्रणामी संप्रदाय के जामनगर निवासी, स्वामी प्राणनाथ ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में पहली बार पहचाना था। वे भी गुजराती थे। हिन्दी गद्य के उन्नायकों में से एक लल्लूलाल, गुजराती थे। स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी- ये सभी गुजराती थे, हिन्दी की राष्ट्रीय अस्मिता तथा विकास के लिए प्रतिबद्ध थे। आज गुजरात में रहने वाले और हिन्दी में लिखने वाले, हिन्दी के लिए काम करने वाले लोगों की राष्ट्रीय पहचान क्या है मीरा की पहचान कृष्ण भक्ति थी, भाषा माध्यम थी,प्राणनाथ की पहचान उनकी अपनी धार्मिक क सांस्कृतिक भूमि थी, भाषा माध्यम थी। फोर्ट विलियम कॉलेज ने लल्लूलाल को पहचान दी, राजनीति ने गांधीजी को पहचान दी तथा स्वामी दयानंद सरस्वती को राष्ट्रीय नवजागरण ने पहचान दी।

अब सवाल यह है कि गुजरात की आधुनिक तथा समकालीन हिन्दी रचनाशीलता देश अथवा प्रदेश की किस व्यापक अस्मिता के लिए रचनाशील है? आज गुजरात में लिखे जाने वाले समकालीन हिन्दी साहित्य के पास ऐसी क्या आधार भूमि है, जो उसे राष्ट्रीय मंच पर पहचान दे सकती है आज राष्ट्रीय स्तर पर लिखे जाने वाले मुख्यधारा के हिन्दी साहित्य में गुजरात का प्रतिनिधित्व क्या है गुजरात में लिखी जाने वाली कविताएं, कहानियाँ तथा उपन्यास, समीक्षा आदि क्या हिन्दी प्रदेशों में लिखे जाने वाले साहित्य की मुख्यधारा का एक हिस्सा बन सके हैं नागरी प्रचारिणी के एक अंक में रजनीकांत जोशी जी ने यह प्रश्न उठाया था कि क्यों गुजरात के हिन्दी साहित्य को मुख्य धारा में पहचान नहीं मिलती। स्वतंत्रता के पूर्व गुजरात में जो कुछ भी हिन्दी संबंधित हुआ वह मुख्यधारा के समानांतर था। आजादी के बाद भारत में विभिन्न प्रदेश बने अतः एक विभाजन तो अपने आप हो ही गया। विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्यापन का आरंभ हुआ अतः हिन्दी-सेवी की संख्या में वृद्धि हो गयी। हिन्दी में पढ़ना लाभदायी है- तो हिन्दी में और हिन्दी का अध्ययन किया गया। स्वतंत्रता मिल गई अतः राष्ट्रभक्ति मसला नहीं रहा, आधुनिकता के कारण भक्ति मसला नहीं रहा। फिर हिन्दीतर प्रदेशों में विभिन्न प्रकार के अनुदान एवं हिन्दीतर होने की सत्ता ने हिन्दी के विकास में बाधा पहुँचायी। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज हिन्दी के साथ किसी-न-किसी रूप से संबंधित लोगों

का संख्या पहले की अपेक्षा बहुत अधिक है, परन्तु इन सभी में हिन्दी भाषा की अस्मिता के लिए समर्पित लोगों की संख्या कितनी ी हमारे पास एक अवसर आया था जब हम हिन्दी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता अभिव्यक्त कर सकते थे। मेरा संकेत है राज्य की उस शिक्षा नीति की ओर जहाँ हिन्दी को वैकल्पिक भाषा बनाया गया। लेकिन हम में से लगभग सभी यह अवसर चूक गए । पूरी ज़िन्दगी हिन्दी का लाभ और हिन्दी से रोटी कमाने वाले हिन्दी के लोग अपनी मातृ-भाषा संवर्द्धन में लगे रहे, अवसर मिलने पर अंग्रेज़ी के समर्थक भी हो गए। जो हिन्दी सेवी के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए थे वे न जाने किन संभवित राजनीतिक लाभों के लिए चुप रहे। पर इन सब में हिन्दी की स्थिति तो रघुवीर सहाय के शब्दों में 'दुहाजू की बीबी'ही बनी रही है।

अगर आपने नयी शिक्षा नीति का मसौदा पढ़ा हो तो आपने देखा होगा कि उसमें हिन्दी के लिए कोई जगह नहीं है। अंग्रेज़ी, संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषाएं, विशेषकर दक्षिण की, उसमें परिलक्षित होती हैं, हिन्दी नहीं। क्या इसलिए कि हिन्दी किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है? वैश्विक हिन्दी सम्मेलन इसके लिए आंदोलन के स्तर पर काम कर रहा है। गुजरात में रहने वाले हिन्दी लेखकों तथा हिन्दी का प्रयोग करने वाले अन्य लोगों के पास अभी भी यह एक अवसर है कि वह हिन्दी रचनाशीलता के माध्यम से हिन्दी की रक्षा करें।

जय हिन्दी!! जय भारत!!

❑